9

मानवीनी भवाई

रघुवीर चौधरी

प्रादेशिक जीवन को कलात्माक अभिव्यक्ति देने में पन्नालाल सफल रहे हैं। कथातत्त्व के प्रति विशेष रुचि रखनवाले पाठक और कृति की सर्जनात्मकता को प्राथमिकता देनेवाले समीक्षक दोनों को उनकी ऑचलिक कथासृष्टि अभूतपूर्व लगी है। प्रारम्भिक लघु-उपन्यासों ('वळामणां', 'मळेला जीव' और 'पाछले वारणे') में लोकस्पन्दन का सूक्ष्म निरूपण हुआ है।

'मळेला जीव' (हिन्दी अनुवाद 'जीवी') द्वारा मिली प्रसिद्धि उन्हें बम्बई के फिल्म-जगत में खींच ले गयी थी। श्री झवेरचंद मेघाणी ने उन्हें उचित समय सावधान किया और अपने प्रदेश की विशिष्टता को अभिव्यक्ति देने के लिए वापस मांडली भेजा। 'मानवीनी भवाई' के कई अध्याय खेत में मचान पर बैठकर कौवों को उड़ाते-उड़ाते लिखे गये हैं।

इस उपन्यास के उत्तरार्द्ध में 'छप्पनिया' अकाल के महाकाव्योचित वर्णन ने उन्हें अभूतपूर्व कीर्ति प्रदान की। दस वर्ष के बाद, दूसरा भाग 'भांग्यानां भेरु' प्रकाशित हुआ। फलक तो वही था लेकिन अकाल के कटु यथार्थ एवं उसके संश्लिष्ट चित्रों का विस्तार नहीं हुआ और न उनके बदले में मानव जीवन का आशास्पद चित्र ही आया। दूसरे दस वर्ष के बाद प्रकाशित 'घम्मर वलोणुं 1-2'में उनकी लेखन पद्धति का पुनरावर्तन ही दिखायी देता है। कथा साहित्य के उच्च मानदण्डों के आधार पर मूल्यांकन करने पर भी 'मानवीनी भवाई' 'श्रेष्ठतर' प्रमाणित होती है परन्तु उसी के संदर्भ में लिखे गये अगले दोनों भागों के साथ विचार करते समय कुछ सवाल उठ खड़े होते हैं।

तीसरे खण्ड में पहले जैसा ही प्रणय-प्रसंग देखने को मिलता है। सात-आठ दशकों में परिवर्तित परिवेश और मूल्यों को अभिव्यक्ति देने में लेखक सजग नहीं रहे, सम्भवतः कथा की रोचकता पर ही विशेष ध्यान दिया गया है। पात्रों को ज्योतिष की भविष्यवाणी और दैवीय संकेतों के आधार पर क्रियाकलाप

करते दर्शाया गया है। जीवन की अनिश्चितता और संश्लिष्टता का तनावपूर्ण मुकाबला करने वाले प्रथम भाग के कालू-राजू को बाद के दोनों भागों में सरलता से समझा जा सकता है।

कृति एक ही दिशा में आगे बढ़ती है फिर भी समय को प्रधान तत्त्व मानकर नहीं लिखी गयी है। समय को व्यापक फलक पर लिया गया है, उसका मुख्य कारण कथालेखन की सुविधा के लिए 'छप्पनिया' अकाल को समाविष्ट करना था। बाद का समय पात्रों और घटनाओं के अनुसार कहीं धीमे तो कहीं छलाँग लगाता प्रतीत होता है। लेखक के सामने समय नहीं, कथा ही है, हाँ वह रोचक अवश्य है।

पहले अध्याय में कालू को पचास वर्ष के जीवन का स्मरण करते हुए चित्रित किया गया है:

"इस अंधेरे में मैंने अपनी व्यर्थ बीती जवानी को हृदय की डिब्बी में बन्द रखा फिर भी, परायी हो गयी राजू को, खून का रिश्ता होने पर भी दुश्मन जैसा व्यवहार करने वाले अपने चचेरे भाई नाना को और खो गये अपने बेटे प्रताप को खोज रहा हूँ।"

यहाँ जैसा निर्देश है उसके अनुसार कालू की स्मृति में 'भांग्यानां भेरु' के बादवाला भाग नहीं है। कालू-राजू के मिलने के बाद कथा किस तरह आगे बढ़ेगी उसके बारे में शायद लेखक ने सोचा ही नहीं होगा, तीसरे भाग का विचार उन्हें बाद में आया है। आगे के दोनों भागों के विस्तार की अपेक्षा तीसरे भाग का विस्तार बढ़ गया है। परन्तु 1947 से 1966 के बीच पन्नालाल की लेखन-पद्धति और सर्जनात्मकता में विशेष बदलाव न होने के कारण बाद में लिखा गया वह भाग भी पूर्व लेखन के साथ घुलमिल जाता है। उन्हें प्रथम भाग के पहले अध्याय को बदल देना चाहिए था। उसे निकाल देते तो भी कथासूत्रता में व्यवधान नहीं पड़ता, क्योंकि पात्रों के स्मृति-पट पर पूर्ववर्ती प्रसंग उभरते हों ऐसी कोई पद्धति उन्होंने अपनायी ही नहीं है। लेखक स्वयं ही बात कहता है और कालू के जन्म से पहले की, बाद की तथा उसकी चेतनावस्था से सीधा सम्बन्ध न रखते हुए भी कई प्रसंग आये हैं।

प्रकृति के थोड़े आलंकारिक चित्रण के बाद साठ वर्ष के वाला डोसा के यहाँ कालू के जन्म का वर्णन है। बधाई स्वीकार करते हुए बूढ़े को भावुक होता बताया गया है। जन्मे बालक को धरती की गोद में छोड़ देने की उदारतापूर्ण इच्छा बूढ़े बाप के मुख से गीत की पंक्ति में कही गई है। कालू अपने घर से बाहर की दुनिया को भी अपनी समझकर व्यवहार करे, ऐसी मानवतापूर्ण आकांक्षा में लेखक की भविष्यवाणी मिली हुई है। फिर भी 'ब्राह्मण भविष्य भाख्यां' नाम से तीसरा अध्याय लिख गया है। बूढ़े वाला को पुराणी नामक राहगीर मिल जाता है। कालू नाम रखा जाता है। बूढ़े की जिज्ञासा संतुष्ट हो जाती है: 'तम्हारा पुत्र पुरूषार्थी निकलेगा, बूढ़ा ... बिना सरपंच बने न्याय करेगा। आँगन में घोड़ा होगा। जाति और राज्य में नाम कमायेगा' (पृ. 47-48) पुराणी द्वारा बताया गया भविष्य स्वयं की परिकल्पना (प्री-कन्सेप्शन) के रूप में लेखक ने कथा को आगे बढ़ाया है। पुराणी को उसकी वृद्धावस्था में (भांग्यानां भेरु, पृ. 276) कालू के घर वापस लाया गया है। वह कालू के पुत्र प्रताप का भविष्य बताता है। उस अध्याय का नाम रखा गया है 'छट्ठीना लेख'। प्रताप और चम्पा के मिलन से पहले भी कालू-राजू ज्योतिषी की भविष्यवाणी बीच में लाते हैं। प्रताप कालू का पुत्र नहीं है, यह भेद प्रकट करने से पहले भी पुराणी को लाया गया है। अन्त में कालू और प्रताप को सांत्वना देते स्वामी जी द्वारा भी लेखक ने भविष्यवाणी के दायरे में जीवन का मूल्यांकन किया है। लेखक ज्योतिष के गणित से निकलकर नियति की रहस्यात्मकता तक पहुँच सके, इसकी सम्भावना इस कथा की सृष्टि में ही थी।

ज्योतिष के प्रति आस्था पात्रों की मान्यताओं और यथार्थ जीवन (समाज में व्याप्त विश्वास) के चित्रण के संदर्भ में प्रकट हुई होती तो कोई दिक्कत नहीं होती। परन्तु लेखक इस तरह जुड़ा है कि इस पर बल देता मालूम पड़ता है। समग्र रूप से देखा जाये तो लेखक किसान के उत्पादक श्रम का गुणगान करना चाहता है। बाबा की लंगोटी से प्रारम्भ करके अन्त में अकाल के दुष्कर दिनों में भी भीख माँगने के लिए तैयार न होने वाला कालू अनेक अर्थों में 'पस्थमीनो पोठी' - पृथ्वी का भारवाहक है।

कालू जन्म से ही प्रतिकूल परिस्थितियों में बड़ा हुआ है। ये परिस्थितियाँ युवावस्था तक मानव-सृजित ही हैं। सगी चाची माली डोसी और फिर उसका पुत्र रणछोड़ तथा नाना कालू का अहित करने की घात लगाये रहते हैं। बचपन में राजू के साथ हुई सगाई तुड़वाने के लिए लेखक ने राजू के साथ मामा मनोर को भी इन लोगों के पक्ष में मिला दिया गया है। किशोर कालू-राजू को खेत में देखकर जहाँ पाठक को आनन्द आता है वहाँ मनोर क्रोधित होता है :

"और राजू - हल को भूलकर, 'गटक-गटक' पानी पीते कालू की ओर ताकती रही। कालू ने अपने पेट में समा सकने की मात्रा से भी दुगना पानी पी लिया- डेढ़ सेर का लोटा आधा कर दिया तो भी राजू ने उससे आग्रह किया: 'सारा पी जा ना मैं फिर से भर लाऊँगी।" (पृ. 110)

कोदर की भूल के कारण भाग रहे बैलों के हल की फाल न लग जाये, इसलिए सब इकट्ठे हो जाते हैं। वहीं घोड़ी पर चढ़कर मामा मनोर आ पहुँचता है। सब देखता है। प्यार करने के स्थान पर डाँटता है।

यदि वह हठपूर्वक कालू का अहित करने पर उतारू हो जाये तो समझ में आ सकता है। जाति के पंचों द्वारा, जिस दिन कालू-राजू का विवाह होनेवाला था उसी दिन उनका अलग-अगल विवाह करवा दिया जाता है। कालू की पत्नी भला की चाची बनना राजू के भाग्य में आता है। दोनों के बीच संपर्क-सूत्र रखने की लेखक की युक्ति यहाँ एकदम स्पष्ट है। पेथो पटेल और उसकी पंचायत द्वारा आंजणा पाटीदार जाति के रीति-रिवाजों की वास्तविकता उद्घाटित करने के साथ भाषा की एक विशिष्ट शक्ति की भी अनुभूति करायी गयी है।

ईर्ष्या-द्वेष से ही पोषण प्राप्त करके जीवित रहनेवाली माली बूढ़ी के कृति में प्रवेश करते ही लेखक की इस भाषा की शक्ति से कारण अपना महत्व प्रगट कर पाती है। उसके मुख से निकलती भाषा के कहावतें-मुहावरे और उसकी रणक 'टोन' उपन्यास के आँचलिक रूप को जीवंत कर देते हैं। बूढ़े वाला द्वारा कहलायी गयी बाबा की लंगोटी का प्रसंग सुननेवाले और कहनेवाले की भाषा और उससे प्रस्फुटित होती मानसिकता भी उपर्युक्त तथ्य को पुष्ट करती है। यहाँ के आठ-नौ पृष्ठों के कुछ अंश वाला डोसा से सम्बन्धित हैं। मुख्य रूप से

तो बनिया-ब्राह्मण जैसी उच्च जाति की पलायनवृत्ति का संकेत देकर कष्ट सहन करने की किसान की विशेषता का ही संकेत किया गया है।

वाला की मृत्यु के बाद कालू की माँ रूपा का पात्र प्रकाश में आता है। लेखक माँ और पुत्र की संयुक्त पीड़ा को अभिव्यक्ति देने में सफल रहा है। निराधार कालू को कठिनाइयाँ दुःखी नहीं कर सकतीं। बरसात हुई और गाँववालों ने हल जोते परन्तु छोटा कालू क्या करे? रूपा मदद करने जाती है। वहाँ माली आदि के उकसाने पर दबाव डालने के लिए उसे खेत में लिटाकर बैल हाँककर उसरे ऊपर से माँगा चलाने के प्रसंग में गाँववालों की मानसिकता में परिवर्तन का चित्रण है। यहाँ लेखक की सजगता और लेखनकौशल स्पष्ट है। परन्तु इस दण्डविधान के लागू होने से पहले बरसात हो जाती है। लेखक गाँववालों की दृष्टि से रूपा के सतीत्व का जो रूप प्रस्तुत करता है उसमें अतिशयोक्ति प्रतीत होती है परन्तु साथ ही प्रदेश विशेष की मानसिकता की पहचान भी कराता है।

यहाँ कासम तेली जैसा पात्र ध्यान आकृष्ट करता है। वह रूपा चाची के सबसे अधिक शुभचिन्तकों में है। ग्राम-जीवन की असाम्प्रदायिकता इस उपन्यास में कासम के पात्र द्वारा अनायास व्यक्त हुई है।

'अबोला कालू-राजू' (अध्याय - 15) से लेखक कथा का आधार बदलता है। राजू अब भी भूल से कभी-कभी रूपा को सास कह जाती है। रिश्ता कहीं गहरे उतर गया है। यह कमसिन-रिश्ता कहीं असंगत नहीं लगता।

पात्रों के बड़े होने पर लेखक को रोमांटिक चित्रण की सुविधा रहती है। राजू की आंखों को अनेक बार धारदार ... नुकीला कहा गया है। कालू को चिढ़ाने के लिए कभी राजू रामा और भगा से हँसी मजाक करती है। सिर से ऊँचे मक्के के खेत में बोझ उठवाने के लिए नाना को बुलाती है और आशंकित कालू छिपकर देखता है। मजाक करने पर राजू नाना को तमाचा लगाती है इससे खुश होकर कालू बोझ उठवाने पहुँचता है। वहाँ उसे देख लेने पर भी एक मन का बोझ राजू अकेले ही उठा लेती है - इस प्रकार के प्रसंगों को पात्रों की संवेदना के साथ मिलाकर कथावस्तु को विकसित करने में पन्नालाल निपुण हैं।

लेखक ने राजू के रूप के साथ कालू के अंग-सौष्ठव की प्रशंसा की है। कोदर गोफन से पत्थर फेंकता है, उससे भी आगे गिरता है कालू द्वारा फेंका गया पत्थर। कालू की शक्ति उसके संयम में ही निहित है, साथ ही राजू के प्रति प्रेम भी, उतना ही जीवंत है। राजू के गौने के प्रसंग पर कोदर खाने के लिए बुलाता है, तब कालू कहता है "तू तो जानता है, कोदर!.....मैं नहीं आऊँगा।" ससुराल जाती राजू की आँसूंभरी आँखें कालू को खोज रही हैं। 'कालू रो रहा है, यह वह देखती रही....कलपती रही।' राजू के यौवन की उच्छृंखलता, हँसी-मजाक, मस्ती, सभी उसकी अनुभवजन्य समझ में लुप्त हो जाते हैं। लेखक ने इस परिवर्तन को बताने के लिए प्रसंग की आयोजना के स्थान पर चार-पाँच वाक्यों से काम चला लिया है। राजू तो अपनी ससुराल चली जाती है परन्तु कालू अपनी पत्नी के साथ ब्रह्मचर्य का पालन करता है। अन्त में हारकर भली को बुलाने जाता है। राजू वहीं है और लेखक को इन दो युवा हृदयों की भावनाओं को एक-दूसरे के संदर्भ में चित्रित करने का अवसर मिलता है। नहाने उठता है तब बाड़े में राजू होगी यह मानकर कालू ठंडा पानी मँगाता है। परन्तु राजू ठंडा पानी लेकर भली को ही भेजती है। फिर दरवाजे की आड़ से पूछती है : 'डाल लिया न ठंडा पानी?' भीतर की वेदना, आँखों में मिलन की आशा और उसके साथ ही यह उपहास - ये सब इस प्रकार अभिव्यक्ति पाते हैं कि सन्तुलन बना रहे। सम्भवतः उपहास के संदर्भ में अंतर्निहित वेदना की तीव्रता बढ़ जाती है।

कालू-नाना का झगड़ा, मारपीट और राजू को नाना अपने घर में बिठा लेनेवाला है, इस अफवाह से कालू को आशंका होती है। यह सब स्थूल रूप से चित्रित हुआ है। कालू राजू को बुलाकर उसकी इच्छा जानना चाहता है उस समय राजू के टेढ़े उत्तर कथारस में नाट्यात्मक उत्तेजना की सृष्टि करते हैं। संकेत किया गया है कि कालू को राजू के बारे में ऐसी शंका करने की आवश्यकता नहीं। ईर्ष्या और अभिमान के संयोग के कारण कालू की इस प्रकार की भावनाओं को बल मिलता है। वह बेचैन होता है, सोचता है: "यदि राजू समझाने पर नहीं मानती तो अन्त में ...काट डालूँगा, पहले उसे और फिर स्वयं को, नानिया को भी जीवित तो नहीं छोडूँगा ...।" प्रेम जैसी सूक्ष्म-तरल भावना के साथ इस उग्र

रूप का निरूपण पन्नालाल द्वारा अभिप्रेत वास्तविकता को उद्घाटित करने में सहायक है। राजू के टेढ़े उत्तर सुनकर कालू साधू हो जाने की धमकी देता है तो राजू टोकरा भर राख ले आने को पूछती है। 'जा, तुझे जो अच्छा लगे वह कर', घर जाते कालू को चिढ़ाते हुए राजू ऊँची आवाज में कहती है। 'चुपचाप मन शान्त करके सो जा । राजू का दिमाग नहीं फिर गया जो दो घर के बाद तीसरा घर.....राजू घर जाकर बहुत रोती है। उसे नाना के साथ भेजना चाहते अपने घरवालों को टका-सा जवाब दे देती है। नाना दूसरी स्त्री लाकर अपने स्वाभिमान की रक्षा करता है। यहाँ (अध्याय 20 से 25) कथा के दाँव-पेंच पात्रों की संवेदना से अधिक महत्त्वपूर्ण हो गये लगते हैं।

'परथमीनो पोठी' अध्याय मुख्य पात्र को ही नहीं पूरे समुदाय से सम्बन्धित परिवेश को प्रस्तुत करता है। 'भांग्यानां भेरु' में कालू और ठाकुर के सम्बन्धों को उजागर करनेवाले प्रसंग हैं जिनमें कालू की परोपकारिता और ठाकुर के विवेक का संकेत है। यहाँ 'परथमीनो पोठी' में बदलती ऋतु के चित्र आलंकारिक एवं तथ्यपूर्ण रूप से प्रस्तुत किये गये हैं:

"इस ओर गेंद-बल्ले के खेल का पर्व मकर संक्रान्ति आ गयी। साथ ही शिशिर में झूमते वृक्षों के से हरे कपड़े भी उतार ले गयी। बसंत ने वासंती चुनरी बिछायी थी वह भी फागुनी पवन ने उडा दी ...। एक ओर पकी फसल पर हँसिया चला, दूसरी ओर होली के ढोल बजने लगे।"(पृ.262)

इस प्रकार की है वर्णनों की कलात्मकता। यदि इनके साथ तथ्य गुंथे न होते तो यह आलंकारिक चित्रण नीरस लगता। पन्नालाल में अलंकारों का पुनरावर्तन तो दिखायी देता है परन्तु वे तथ्यों से अलग प्रतीत नहीं होते। परिवेश का चित्रण करते समय वे गौण पात्रों की ओर ध्यान खींचना नहीं भूलते। नौटंकी के बारे में रामा की टिप्पणी है: "ये नट-नटी ही खेल को जमाते हैं। लोगों को ये ही अच्छे लगते हैं।' रामा में थोड़ी विदूषक-वृत्ति लेखक ने बड़ी स्वाभाविकता से डाल दी है।"

मुख्य पात्र और गौण पात्र अलग-अलग न रहें और उनके चारों ओर प्रादेशिक परिवेश ही सघनता से छाया रहे, इस प्रकार के उपन्यासों को हिन्दी में आँचलिक कहा गया है। पन्नालाल के इस उपन्यास में 'परथमीनो पोठी' जैसे

अध्यायों की रचना-शैली आँचलिक कथा के अनुरूप है। अकाल और बरसात के बाद अकाल के प्रभाव का पूरा वर्णन, 'फरतो राजा' में बनजारे का गुजरना (भंग्यानां भेरु, अध्यायः13), 'गोरे ताण्या तंबू' और विवाह के उत्सव का वर्णन, होली का वर्णन,और गालियाँ (घम्मर वलोणुं - 8,10), दावाग्नि और पहाड़ी का तथा भील पर होनेवाले अत्याचारों का वर्णन, टिड्डी के समूह, बदलता जमाना (घम्मर वलोणुं, अध्याय-3-7),नटी का खेल (अध्याय-45) और लोकगीतों की पंक्तियों द्वारा कथा, पात्र और अंचल विशेष को एकसाथ लेकर आगे बढ़ती है। इस रचनारीति से ही समग्र उपन्यास की रचना सम्भव थी और कहा जा सकता है कि ऐसा करने पर कृति कुछ विशिष्ट बन जाती। परन्तु पन्नालाल ने कथातत्त्व को गूंथने पर विशेष ध्यान दिया है जो उन्हें अपना मुख्य उद्देश्य लगा है।

अकाल का चित्रण करते समय कालू अधिक समय तक उपेक्षित न रहे,, इसका लेखक ने ध्यान रखा है। राजू को प्राप्त न कर पाने का पछतावा पुनरावर्तित होता रहा हैः 'पनघट पर तांबे के कलश चमक रहे हैं। पतली, लम्बी तीखी आँखोंवाली गोरी राजू गर्दन उठाये आती है और विशिष्ट छटा से गागर संभालती है।' (मानवीनी भवाई पृ.280)। कालू ससुराल में सहायता करने जाता है। उस समय मिलना होता है फिर राजू मायके आती है तब अतृप्ति का उद्‌गार निकल जाता हैः "राम जाने क्या चाहिए परन्तु इतना जानता हूँ कि मन नहीं भरता? मानों जन्म से ही भूखा हूँ और भूखा ही रहूंगा।" (पृ.287) अब राजू से मिलने बार-बार नहीं जाना हो पायेगा और मन की भावनाएँ मन में ही रखकर जीवन पूरा कर देना होगा। ऐसे प्रसंगों से जिज्ञासा होती है कि अब लेखक कालू और राजू के प्रेम-सम्बन्ध को किस रूप में विकसित करेगा? वहीं अकाल सहायता करता है। कालू आखिरी बार मिलने जाता है और आशीर्वाद माँगता है। राजू अपनी आपबीती कहती है। अनाज लाते समय 'सेठ ने मेरी सुन्दरता की प्रशंसा की और छेड़छाड़ की, उस दिन खाली हाथ वापस लौटते समय मेरे मन में विचार आया कि यदि मैं पुरुष होती तो उस साहूकार का खून कर देती और भूखों को ललकार कर उसका गोदाम लुटवा देती। "राजू को जीवन में कोई रुचि नहीं रही। अब तो कोई इच्छा बची है तो बस एक हीः साथ

ही जलें।" सास-ससुर के आग्रह करने पर कालू खाने के लिए रुकता है। खाते-खाते कालू की आँखों में आँसू आ जाते हैं। 'चुपचाप खा लो' कहते हुए राजू कालू के सिर पर हाथ फेरती है। आशीर्वाद मिल जाता है। अब गोद में सिर रखकर रोने का अरमान अधूरा नहीं रहता।

वापस लौटते समय कालू गाँव में पशु-चोरी हो जाने की आवाज सुनता है और दौड़ता है। भीलों के पहाड़ में घुस जाने पर गाँववाले तो वापस लौट आते हैं, अकेला कालू घाटी के पास तलवार और धनुष लेकर प्रतीक्षा करता है। पशु के काटे जाने की आवाज सुनकर वह दूसरी पहाड़ी पर चढ़ जाता है और देखता है:

"बीस-पच्चीस अस्थि-पिंजर, उस मरे हुए पशु पर टूट पड़े हैं, दांत ही छुरी थे और अग्नि तो पेट में भड़क रही थी? कालू काँप उठा। क्षणभर उसे भ्रम हुआ: क्या गिद्ध हैं?"

"गिद्धों की तरह ही हो रहा था,: कोई किसी लड़के को धक्का मारता था, तो कोई बुढ़िया खून पी रही थी। पशु के एक-एक पैर को दो-दो आदमी नोंच-नोंचकर खा रहे थे।" (पृ. 310-11)

पचास अस्थि-पिंजरों की टोली पन्द्रह के करीब पशुओं के साथ दूसरे रास्ते पर दिखायी देती है। उसमें कालू अपनी भैंस को देखता है। म्यान में से तलवार निकाल लेता है:

"वे पशु और मनुष्य घाटी के पास आनवाले ही थे कि एक ने दो-चार लागों के मना करने पर भी एक पड़िया के गले में तलवार घुसेड़ दी।"

"उन 'ना' 'ना' कहने वालों ने भी एक-एक को लिटा दिया।

वे उन पशुओं के चारो ओर जुट गये - मानों गुड़ की भेली पर चींटे चिपट गये हों!"

"एक टोली ने छुरी का उपयोग किया तो दूसरी ने कुल्हाड़ी का तो तीसरी टोली ने उस घाटी के बीच में एक बैल को घेर लिया और सब ओर से पत्थरों की वर्षा शुरू कर दी।" (पृ. 312-13)

कालू हमला करना भूल जाता है। वह सोचता है - ये लोग कब मार पायेंगे और कब खायेंगे? और बेचारा पशु कब मुक्त होगा?

वह तलवार फेंककर चल देता है। भगवान् को शाप देता है: "अकाल देनेवाले भगवान, तेरा सर्वनाश होगा, तूने मनुष्य की यह हालत बना दी!" यहाँ व्याकुल और उत्कट कालू की भावनाएँ प्रबल रूप में व्यक्त हुई हैं। देवता के सामने ताल ठोंकने की इच्छा उभर आयी है। 'इस आकाश में छेद कर डालूँ' जैसे कथनों में पागलपन नहीं, विक्षिप्त मन की झलक मिलती है।

भूख का यह वर्णन हृदय को छू जाता है। ऐसे वर्णनों में समर्थ लेखक गंध और रंग के बिम्ब प्रस्तुत करके पाठक को अभिभूत कर देते हैं। पन्नालाल भूख की स्थिति के चित्रण में आगे निकल गये हैं। खाली हाथ लौटता कालू यह सब देखेगा और उन्हें पीछे छोड़ देगा, इसका संकेत देकर लेखक सघनता की कमी अनुभव नहीं होने देता, इतना ही नहीं, वह वीभत्स और भयंकर की सीमा तक पहुँचा देता है:

"परन्तु पहाड़ी से रास्ते की ओर जाता है वहीं उसकी नजर एक झंखाड़ पर पड़ती है। बाघ को देखकर जिस तरह घोड़ा स्तब्ध भाव से रुक जाता है, इस दृश्य को देखकर कालू की वही हालत हो गयी। कुछ क्षणों तक तो न आगे पैर बढ़ा न पीछे । नजर भी वहाँ से नहीं हटी... परन्तु वहीं मानों टूटी हुई रीढ़ की हड्डी सीधी हुई। खरगोश की तरह वह पास की झाड़ियों में अदृश्य हो गयी। वह अपने मन को समझाता है, नहीं, नहीं, वह डाकिन ही थी। अरे अगर स्त्री थी तो फिर वह खा तो खरगोश ही रही थी...."

यहाँ दृश्य अपने प्रतिबिम्ब रूप में वर्णित है। कालू की संवेदना में निर्मित छाया का हम अनुभव कर सकते हैं। बालक को खाती हुई स्त्री का चित्रण इतना प्रभावपूर्ण नहीं होता। यहाँ लेखक की सूक्ष्म दृष्टि पाठक को जकड़ लेती है। पन्नालाल की सर्जकता यहाँ अपने उच्चतम शिखर पर है।

अगणित भूखों की लूट-पाट का प्रभाव कालू के शौर्य पर दूसरा ही होता है। "भूख खराब है भाई, आदमी खराब नहीं!" यह विचार उसके मस्तिष्क में आता है। कोई मारने लगा तो ही हाथ उठाऊंगा, चाहे वह पूरा घर ही लूट ले जाये,

वह ऐसा निर्णय कर लेता है। अपना अनाज वह उन भाइयों में बाँटता भी है। भीलों की टोली द्वारा लूट-पाट करने पर कुशलतापूर्वक अनाज छिपा लेता है और उसका घर बच जाता है। मंगल भील को खेत मजदूर के रूप में भागीदार रखा है इससे भी उसे लाभ ही होता है। टोली गुज़र जाती है, उसके बाद वह देखता है - दो छायाएँ आ रही हैं। एक के हाथ में तलवार है और दूसरे के हाथ खाली हैं। कालू के घर में प्रवेश करती हैं। साला, मारने को लाया है क्या।' क्षणभर में परिस्थिति समझ में आ जाती है। दूसरी छाया स्त्री की थी, शर्म के कारण वह कमरे का कोना खोज लेता है।

बाद का पूरा अध्याय माली की मृत्यु से सम्बन्धित है। सबने अपने गहने दबा दिये हैं। जब कि माली पूरे परिवार के गहने अपने पास रखकर सो रही थी। टोली चली गयी तो बुढ़या की खोज की जाती है। कहीं पता नहीं चलता। अन्त में पहाड़ी पर मिलती है।"बीच में बुढ़िया और दोनों ओर दो बड़े-बड़े पत्थर। ऐसा लगता था मानों कोई विशालकाय बगुला अपने सफेद पंख पसारे बैठा हो।"

नाना गहनों की पोटली खोजने लगता है। कालू बुढ़िया के नंगे शरीर पर अपने सिर का अंगोछा ढक देता है। अग्नि-संस्कार के समय भी कालू अपनी अंगूठी तोड़कर बुढ़िया के मुख में एक टुकड़ा रख देता है। घरवाले अपने दुःख से रो रहे हैं। नाना अपनी छाती में मुक्के मारता हुआ बड़बड़ाता हैः 'चली गयी तो चली जा, परन्तु इतना याद रखना ऊपर पहुँचकर तेरे गले से लगकर खून नहीं पिया तो समझना कि तेरे पेट से पत्थर पैदा हुआ है।'

माली थी तो कालू की दुश्मन, परन्तु सबसे अधिक अपने परिवार के लिए ही संकट बन जाती है। लेखक को इस दुष्ट चरित्र का नाट्यात्मक अन्त सूझा है।

'मानवीनी भवाई' अध्याय में कालू के शौर्य को प्रभावपूर्ण ढंग से उभारा गया है। कालू अनुभव कर रहा है कि अकाल के दिनों में सामान्य दिनों से भूख अधिक बढ़ी है। पत्नी से झगड़ता नहीं है। डेगडिया (पड़ौस का कस्बा) जाकर रहने के लिए गाँववालों को समझाता है। तिलकचंद सेठ दीवान की गाड़ी में अनाज भरकर ले जा रहा है। कालू उसे रोकता है और हाथ में गोली खाकर भी गाड़ी रोकता है और अनाज लूट लेता है। पठान कालू की प्रशंसा करता

हुआ नौकरी छोड़कर चला जाता है। कालू उसे छोड़ने जाता है, मानवीय भावनाओं का बदलाव यहाँ ध्यान खींचता है।

सब डेगडिया जाते हैं वहाँ उसकी पत्नी भली भी मानो उसे नहीं पहचानती। दूसरी स्त्रियों के साथ वह भी भूख मिटाने के लिए अपने शरीर को बेचती है। कालू सोचता हैः

"यदि कहीं सत्य है तो दो जगह ही हैः एक राजू में और दूसरे मौत में" (पृ.372)।

राजू का चरित्र जिस ऊँचाई पर पहुँचाता है सम्भवतः उस स्थान पर कालू भी नहीं पहुँच सकता। भाग्य की बातों को सच मानकर एक युवा विधवा के बर्तन चमका देता है। उसके बदले में भोजन प्राप्त करता है परन्तु अन्दर ही निराश हो जाता है। भूख के साथ वासना को भी संतुष्ट करनेवाले अन्य चरित्रों में और कालू में यहाँ विशेष अन्तर नहीं रहता। पहले उसने सोचा था कि 'कल से किसी स्त्री को घर से बाहर ही नहीं निकलने देना है।' इस पर शंकरदा ने उससे कहा थाः "ऐसे समय में लाज और इज्ज्त की ज्यादा चिन्ता नहीं की जाती, कालू ... धन्य तो है पृथ्वी जो सबको अपने ऊपर चलने देती है।" (पृ.367)।

कुत्तों को डाली गयी रोटी पर टूट पड़ते मनुष्यों पर गोली दागी जाती है। अकाल के साथ मनुष्य की क्रूरता भी अमर्यादित हो चली है। सुन्दर सेठ ने अनाज बाँटना प्रारम्भ किया है। सब माँगने जाते हैं। कालू हाथ फैलाना नहीं चाहता। वह राजू के कहने पर आया है परन्तु हाथ फैलाने का अवसर आने से पहले ही पंक्ति में से निकल जाता है। भीख नहीं लेनी। सिपाही धमकाता हैः "साले क्यों नहीं लेता? लाट साहब हो गया है?" कालू विवश होकर कहता हैः लाट होता तो ले लेता, किसान हूँ इसलिए नहीं लूँगा। मैं मर जाऊँगा तो भी नहीं लूँगा। गोली मारनी हो तो मार दो, यह खड़ा। कालू मर जाने के लिए तैयार है परन्तु माँगने के लिए तैयार नहीं । सेठ समझाता हैः तुझे अपना ही धान लेते शर्म आ रही है तो हमें भी सदावर्त बाँटने में उतनी ही शर्म आती है।' अन्त में कालू लाइन में खड़ा होता है और कहता हैः

"हमारा है ओर हमें ही लेना है... मेरा भी तो इसमें होगा। उस बरगदवाले खेत का धान, हाथ में लेकर जिसे उठवाया था उस धान के चावल, पहचान लूँ - चुन-चुनकर दिखा दूँ, कहो तो!"

यह ऐसा कथन है जिसका कोई प्रगतिवादी (मार्क्सवादी) समीक्षक दूसरा ही अर्थ निकाल सकता है। पन्नालाल ने इस परिस्थिति की आयोजना कालू के चरित्र के एक-दूसरे पहलू को उभारने के लिए की है। एक श्रमजीवी किसान के द्वारा मानवीय गौरव को अभिव्यक्त किया है। कालू भूख और चिन्ता से टूटता जा रहा है। राजू द्वारा दिया गया सुझाव भूलकर वह गम्भीर होता जा रहा है और पूछता हैः "बुरी से बुरी क्या चीज़ है, तू जानती है?" राजू कहती हैः 'भूख'। नहीं, कालू को एक नये रहस्य का पता चला है, वह कहता हैः "भूख से भी खराब भीख है। भूख तो हमारे हाड़-मांस को ही घुलाती है परन्तु भीख तो हमारी आत्मा और स्वाभिमान को ही खत्म कर देती है, मिट्टी में मिला देती है।" (पृ. 383)। यह है जीवन का मर्म। जिसे पन्नालाल ने अपने अनुभव से प्राप्त किया है।

भूख के कारण या अपने विचारों के कारण या अन्य किसी कारण से मचान में जाते हुए कालू गिर पड़ता है और मूर्च्छित हो जाता है। कालू और राजू अधिक पास आ जाते हैं। कालू इस जीवन से थक चुका है। दूसरे वर्ष का आषाढ़ भी बीतने वाला है। कालू की अब यही अभिलाषा है कि दोनों को एक साथ एकान्त में मौत मिले। राजू उसके साथ चलकर पहाड़ी की तलहटी में बिना पत्ते के बरगद के नीचे पहुँचती है। कालू चित्त लेटा है। दोनों चाहते हैंः 'ऐसे ही मौत आ जाये।' कालू की छाती से सिर उठाकर राजू चलने के लिए कहती है। सूखे गले से कालू की आवाज निकलती हैः 'ऐसी मौत बार-बार नहीं आयेगी' राजू सिहर जाती है। यहाँ पानी भी नहीं है। राजू देखती है कि कालू की आँखें उसके वक्ष-स्थल पर टिकी हैं। उसके फटे हुए कपड़ों पर हाथ फेरती रहती है। कालू कोहनी के सहारे ऊँचा उठना चाहता है उससे पहले राजू झुक जाती है। गले का सूखापन मिटता है मन शान्त हो जाता है। राजू देखती है कि उसकी आँखें सजीव हो गयी हैं और मुख पर मुस्कान है।

इसके बाद बादल दिखाई देते हैं, बूंदें पड़ने लगती हैं। श्रृंगार के बिना रोचकता कम हो जाएगी, सम्भवतः ऐसा मानकर उपर्युक्त प्रसंग के द्वारा उपन्यास को पूरा किया गया है। राजू अपना स्तन कालू के मुख में देती है वहाँ तक श्रृंगारिकता नहीं आती। भावनाओं की संश्लिष्टता ही प्रकट होती है। इसके बाद संवाद में एक दूसरे के मुँह पर हाथ रखने में अनीति का प्रश्न खड़ा नहीं होता। कुछ क्षणों के बाद वर्षा होने वाली ही थी। इस दृष्टि से राजू द्वारा सूखे स्तनपान की अनिवार्यता प्रतीत नहीं होती । बरसात से भीगी सुगंधित हवा भी कालू को सचेत कर जाती है। बरसात का उल्लेख किये बिना ही उपन्यास का अंत आलेखित करने पर इस प्रसंग पर आपत्ति उठायी जाती । पन्नालाल के लेखन में यह प्रसंग आकस्मिक नहीं कहा जा सकता। प्रश्न यह है कि कालू-राजू के चरित्रों की लेखक ने जो संकल्पना की है उससे तो यह प्रसंग असंगत नहीं? लेखक ने अन्यत्र कहा है कि पूरी तरह आश्वस्त होने पर ही उन्होंने इस 'विरूप' घटना का वर्णन किया है। कहा जा सकता है कि कालू-राजू के बीच जो सामाजिक-नैतिक अंतराल थे, एक क्षण के लिए विलीन हो जाते हैं और तनमन का सम्बन्ध व्यंजित होता है।